न फफूंद न काई एक नई इकाई

● दीपक वर्मा, किशोर पंवार

मसाले में डालते हैं और पढ़ते हैं कि टुंड्रा प्रदेश में मिलती है। आखिर क्या बला है यह लाइकन?

ब हम भूगोल की किताब में टुंड्रा प्रदेश की वनस्पतियों के बारे में पढ़ा करते थे तो कई-बार लाइकन का ज़िक्र आता था। यह नाम हमेशा अबूझ बना रहा। और हम चकित ही रह गए जब एक दिन गरम मसाला पीसते समय एक जीव-विज्ञानी मित्र ने छबीला (जिसे पत्थर फूल भी कहते हैं) उठाया और कहा, 'यह भी एक लाइकन है।' पर वो तो बर्फीले टुंड्रा प्रदेश में होती है – वहां की कोई चीज़ हमारी रसोई में कैसे आ टपकी है!! और जब इसी छबीले का सिरा पकड़ कर आगे बढ़े तो मालूम पड़ा कि वनस्पति जगत का यह विचित्र पौधा हमारे आसपास के जंगलों और चट्टानी इलाकों में भी खूब मिलता है।

लंबे समय तक वैज्ञानिक भी लाइकन के अनोखेपन से परिचित नहीं थे। वे इसे काई और फफूंद के बीच का ही कोई पौधा मानते थे। 1868 में मालूम पड़ा कि इस एक वनस्पति में दो अलग-अलग पौधे मौजूद हैं – फफूंद और काई (शैवाल)। काई तो हम जानते ही हैं और फफूंद वही जो अचार, ेटी आदि पर लग जाती है। लाईकन में ये दोनों एक दूसरे से एकदम गुंथे रहते हैं।

क्यों रहते हैं साथ-साथ

एक दूसरे पर निर्भर रहते हुए साथ-साथ रहने को सहजीवन (symbiosis) कहते हैं। फफूंद और काई के लाइकन के रूप में सहजीवन जीने के पीछे अपनी-अपनी ज़रूरतें हैं। फफूंद में क्लोरोफिल नहीं होता इसलिए वह

खुद अपना खाना नहीं बना सकती। वहीं काई में क्लोरोफिल होता है, वह अपने लिए भोजन तो खुद बना लेती है लेकिन हवा या ज़मीन से पानी खींचने का कोई तरीका उसके पास नहीं है और अधिक गर्मी उसके लिए घातक है। इसीलिए उसे नम वातावरण रास आता है। आमतौर पर फफूंद सिर्फ ऐसी जगहों या पदार्थों पर ही जम सकती है जहाँ उसे पोषण मिल सके। इसीलिए रोटी, अचार जैसी चीज़ों पर फफूंद एकदम से लग जाती है । और दूसरी तरफ काई केवल नमी भरी कम तापमान वाली जगहों पर ही होती है। लाइकन के रूप में साथ-साथ रहते हुए दोनों ऐसी जगहों पर भी पहुँच जाते हैं जहाँ उनके लिए स्वतंत्र रूप में रहना असंभव होता! क्योंकि लाइकन में फफूंद, काई को वातावरण से सोखी नमी, खनिज पदार्थ और छाया देती है। बदले में काई उसे खाना बनाकर देती है।

इसी सहयोग की वजह से लाइकन संसार के कठिन से कठिन वातावरण में भी आसानी से रह लेती है, ऐसी जगह पर भी जहां दूसरी किसी वनस्पति को पनपने में बहुत मुश्किल होती है। पूरी दुनिया में लाइकन की 15 हज़ार से भी अधिक प्रजातियां मिलती हैं। कुछ पत्तीनुमा होती हैं और पेड़ के तनों व चट्टानों पर उगती हैं (इसीलिए इन्हें पत्थरफूल भी कहते हैं) तो कुछ तंतुनुमा होती हैं और पेड़ की टहनियों पर फैल जाती हैं। जहां ये नौ फीट तक लंबी हो जाती हैं। कुछ लाइकन आलपिन की टोपी जितनी छोटी भी होती हैं।

कैसे-कैसे लाइकन

तीन तरह के होते हैं लाइकन– क्रुस्टोज़, फोलियोज़ और फ्रुटिकोज़। तीनों अलग अलग वातावरण में

क

पनपते हैं। दानेदार पपड़ी जैसा दिखने वाला क्रुस्टोज़ पेड़ के तनों और ज़मीन से चिपका रहता है। पीले, हरे-नारंगी या हरे धब्बों के रूप में यह हमारे आसपास के चट्टानी इलाकों या पेड़ के तनों पर देखा जा सकता है। रेगिस्तानी इलाकों के अलावा यह आर्कटिक और आल्पाइन क्षेत्रों में भी मिलता है। फोलियोज़ पत्ती जैसा दिखता है। यह उन क्षेत्रों में मिलता है जहां लगातार वर्षा होती रहती है। वहीं फ्रुटिकोज़ शाखादार होता है।

ख

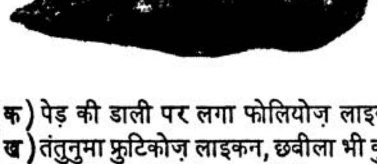

(क) पेड़ की डाली पर लगा फोलियोज़ लाइकन (ख) तंतुनुमा फ्रुटिकोज़ लाइकन, छबीला भी कुछ इसी तरह दिखता है (ग) चट्टान से चिपका सफेद धब्बे-सा दिखता क्रुस्टोज़ लाइकन

इसका घर ऐसे क्षेत्र हैं जहां वातावरण में खूब नमी होती है जैसे समुद्र के किनारे और जलीय इलाकों से सटे पहाड़ी क्षेत्र।

बनावट और प्रजनन

लाइकन के शरीर को थैलस कहते हैं। थैलस का अधिकांश भाग फफूंद के तंतुओं (hyphaes) का बना होता है। पर साथ ही बीच के हिस्से में काई की कोशिकाएँ फंसी-सी रहती हैं। ऐसा दिखता है मानो फफूंद के तंतुओं के घने बुने हुए जाल में काई की कोशिकाएँ फंसी हुई हों।

यह जानना ज़रूरी है कि फफूंद और काई कहीं भी मिल जाने पर लाइकन नहीं बन जाती। लाइकन तो विकास (evolution) **के किसी चरण में बनी थी और आज सिर्फ लाइकन के टूटने, बिखरने से ही नयी लाइकन उगती या पनपती है।**

इसका प्रजनन दो तरह से होता है। एक तो लाइकन का थैलस टूटने (fragmentation) से। टूटा हुआ टुकड़ा नया लाइकन बन जाता है। दूसरी तरह का प्रजनन सोरेडियम से होता है। यह थैलस में बनने वाली एक विशेष रचना है जो लाइकन की सतह पर पड़े धूल के कणों जैसी दिखती है। इसमें काई की कोशिका को चारों

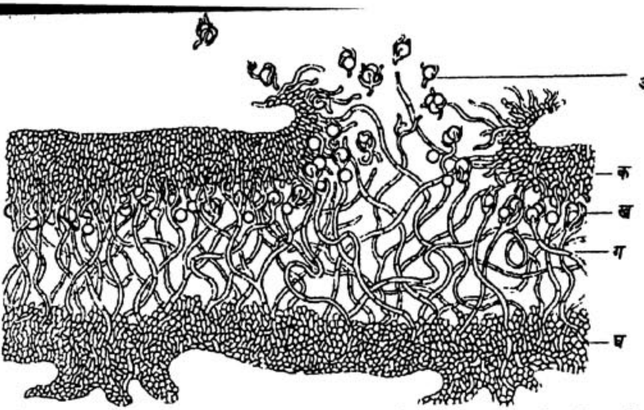

(अ) सोरेडियम: जिसमें काई की एक कोशिका के चारों तरफ फफूंद के तंतु लिपटे हुए हैं।

थैलस की संरचना: चार तहों में ऊपर से पहली *(क)* और चौथी *(घ)* फफूंद के घने तंतुओं की है। दूसरी तह *(ख)* में काई की कोशिकाएं हैं जो फफूंद के तंतुओं की विरल तह *(ग)* के बीच फंसी हुई हैं।

ओर से फफूंद के तंतु घेरे रहते हैं। हवा से सोरेडियम फैल जाते हैं और नई जगह पर बढ़कर नया लाइकन बनाते हैं।

बढ़ती है कछुए की चाल

इसके बढ़ने की गति बहुत धीमी होती है। क्रुस्टोज़ एक साल में एक मि.मी. से भी कम बढ़ता है। तो फोलियोज़ और फ्रुटिकोज़ कुछ से.मी.। लाइकन के पास पानी जमा रखने की क्षमता नहीं होती। उसे लगातार वातावरण से नमी सोखते रहना पड़ता है। वह उस सतह से भी पानी नहीं खींच पाती जिससे चिपकी रहती है। इसलिए गर्मी के दिनों में ये सूखने लगती हैं। लेकिन लाइकन के सूखने का मतलब उसका मर जाना नहीं है। बल्कि यह उसके लिए एक प्रकार का सुरक्षा कवच है। नमी से मुक्त लाइकन में गर्मी सहने की क्षमता बढ़ जाती है। इस तरह गर्मी में सूखने और जाड़े व बरसात के नम मौसम में बढ़ने से उनकी वृद्धि अनियमित-सी होती है। ठंड के दिनों में अनुकूल मौसम मिलने से लाइकन तेज़ी से बढ़ती है।

उपयोग

हम सबने किताबों में पढ़ा ही है कि टुंड्रा प्रदेशों में लाइकन पशुओं का प्रमुख चारा है। अपने घरों में भी गरम मसाले में सुगंध के लिए हम इसका लंबे समय से उपयोग कर रहे हैं। आइसलैंड मॉस नाम का एक लाइकन दवाई के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। डायबिटीज़ नियंत्रित करने, भूख बढ़ाने और सरदी, जुकाम के इलाज में यह उपयोगी माना जाता है। असनिक नाम के एक अम्ल का, जो कुछ तरह के लाइकन से मिलता है, कई देशों में हल्के घाव, इन्फेक्शन आदि के उपचार में उपयोग होता है।

विज्ञान किट में लाइकन

अम्ल और क्षार की बात तो विज्ञान कक्षा में हमेशा उठती ही है। उनकी जांच-पड़ताल के लिए प्रयोग भी होते हैं - लिटमस पेपर के बगैर तो इन प्रयोगों में काम ही नहीं चलता। क्या फटाफट रंग बदलता है – लिटमस। कभी लाल तो कभी नीला। कभी सोचा भी नहीं होगा कि यह बनता किस चीज़ से है – यह बनता है ऑर्किल नाम के रंजक (dye) से। और यह रंजक बनता है लाइकन से! सही है न - विज्ञान किट में लाइकन।

रंगीला लाइकन

लाइकन की खोज में जब होशंगाबाद के पास वाली छोटी-सी पहाड़ी पर पहुँचे तो पीला लाइकन भी दिखा और काई जैसे रंग वाला भी। इसी तरह लाल नारंगी रंग के लाइकन भी मिलते हैं। आखिर कहां से मिलते हैं लाइकन को यह अलग-अलग रंग? दरअसल प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में थैलस में कई प्रकार के कार्बनिक यौगिक भी बनते हैं जो वहीं इकट्ठा होते रहते हैं। यही यौगिक ज़िम्मेदार हैं लाइकन के रंगबिरंगेपन के लिए।

पहले ऊन और सिल्क को रंगने के लिए जो प्राकृतिक रंग इस्तेमाल किए जाते थे वे लाइकन से ही बनते थे। अब इन का स्थान सिंथेटिक रंगों ने ले लिया है।

पिछले कुछ सालों के दौरान हुए अध्ययनों से समझ में आया है कि लाइकन प्रदूषण के प्रति काफी संवेदनशील होती है - इसलिए शहरों और प्रदूषित इलाकों में कम ही देखने को मिलती है। इसी वजह से आजकल शोध का एक प्रमुख विषय यह है कि क्या प्रदूषण फैलाने वाले पदार्थों का पता लगाने के लिए लाइकन का इस्तेमाल किया जा सकता है। यानी कि यह पता लगाने की कोशिश की जा रही है कि विभिन्न गैसों, पदार्थों आदि का लाइकन की वृद्धि पर क्या असर पड़ता है।

तो बात शुरू हुई छबीले से और कहां तक पहुंच गई। हमने तो सोचा था कि लाइकन सिर्फ ठंडे ध्रुवीय इलाकों में मिलती है। पर ऐसा नहीं है। हां, वहां की यह एक प्रमुख वनस्पति है, जबकि अन्य क्षेत्रों में प्रमुख वनस्पति तो नहीं है लेकिन मिलती ज़रूर है। अब देखिए न हमारी रसोई में ही निकल आई!

(दीपक वर्मा - संदर्भ में कार्यरत । किशोर पंवार- शास. महाविद्यालय, सेंधवा, खरगोन, म.प्र. में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक। विज्ञान लेखन में सक्रिय।)